श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

ऋषभ गीता चतुर्थ अध्याय(भा॰म॰5.4)

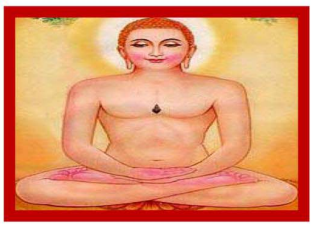

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
पञ्चमं स्कन्धः
॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

श्रीशुक उवाच
अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं(म्)
साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिन-
मेधमानानुभावं(म्) प्रकृतयः(फ्) प्रजा ब्राह्मणा
देवताश्चावनितलसमवनायातितरां(ञ्) जगृधुः ॥ 1॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- राजन् ! नाभिनन्दनके अंग जन्मसे ही भगवान् विष्णुके वज्र-अङ्कुश आदि चिह्नोंसे युक्त थे; समता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि महाविभूतियोंके कारण उनका प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता जाता था। यह देखकर मन्त्री आदि प्रकृतिवर्ग, प्रजा, ब्राह्मण और देवताओंकी यह उत्कट अभिलाषा होने लगी कि ये ही पृथ्वीका शासन करें।

तस्य ह वा इत्थं(वँ) वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छलोकेन
चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां(ञ्) च
पिता ऋषभ इतीदं(न्) नाम चकार ॥ 2॥

उनके सुन्दर और सुडौल शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणोंके कारण महाराज नाभिने उनका नाम 'ऋषभ' (श्रेष्ठ) रखा ।

तस्य हीन्द्रः(स्) स्पर्धमानो भगवान् वर्षे न ववर्ष
तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः(फ्)
प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं(न्) नामाभ्यवर्षत् ॥ 3॥

एक बार भगवान् इन्द्रने ईर्ष्यावश उनके राज्यमें वर्षा नहीं की। तब योगेश्वर भगवान् ऋषभने इन्द्रकी मूर्खतापर हँसते हुए अपनी योगमायाके प्रभावसे अपने वर्ष अजनाभखण्डमें खूब जल बरसाया ।

नाभिस्तु यथाभिलषितं(म्) सुप्रजस्त्वमवरुध्याति-
प्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं(ङ्)
गृहीतनरलोकसधर्मं(म्) भगवन्तं(म्) पुराणपुरुषं(म्)
मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुराग-
मुपलालयन् परां(न्) निर्वृतिमुपगतः ॥ 4॥

महाराज नाभि अपनी इच्छाके अनुसार श्रेष्ठ पुत्र पाकर अत्यन्त आनन्दमन हो गये और अपनी ही इच्छासे मनुष्य शरीर धारण करनेवाले पुराणपुरुष श्रीहरिका सप्रेम लालन करते हुए, उन्हींके लीलाविलाससे मुग्ध होकर 'वत्स ! तात ! ऐसा गद्गदवाणी से कहते हुए बड़ा सुख मानने लगे।

विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा
नाभिरात्मजं(म्) समयसेतुरक्षायामभिषिच्य
ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां(म्)
प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन
नरनारायणाख्यं(म्) भगवन्तं(वँ) वासुदेवमुपासीनः(ख्)
कालेन तन्महिमानमवाप ॥ 5॥

जब उन्होंने देखा कि मन्त्रिमण्डल, नागरिक और राष्ट्रकी जनता ऋषभदेवसे बहुत प्रेम करती है, तो उन्होंने उन्हें धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये राज्याभिषिक्त करके ब्राह्मणोंकी देख-रेखमें छोड़ दिया। आप अपनी पत्नी मेरुदेवीके सहित बदरिकाश्रमको चले गये। यहाँ अहिंसावृत्तिसे, जिससे किसीको उद्वेग न हो ऐसी कौशलपूर्ण, तपस्या और समाधियोगके द्वारा भगवान् वासुदेवके नर-नारायणरूपकी आराधना करते हुए समय आनेपर उन्हींके स्वरूपमें लीन हो गये ।

यस्य ह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति -

को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ।

अपत्यतामगाद्यस्य हरिः(श्) शुद्धेन कर्मणा ॥ 6॥

पाण्डुनन्दन ! राजा नाभिके विषयमें यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है- राजर्षि नाभिके उदार कर्मोंका आचरण दूसरा कौन पुरुष कर सकता है— जिनके शुद्ध कर्मोंसे सन्तुष्ट होकर साक्षात् श्रीहरि उनके पुत्र हो गये थे ।

ब्रह्मण्योऽन्यः(ख्) कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः ।

यस्य बर्हिषि यज्ञेशं(न्) दर्शयामासुरोजसा ॥ 7॥

महाराज नाभिके समान ब्राह्मणभक्त भी कौन हो सकता है— जिनकी दक्षिणादिसे सन्तुष्ट हुए ब्राह्मणोंने अपने मन्त्रबलसे उन्हें यज्ञशालामें साक्षात् श्रीविष्णुभगवान्‌के दर्शन करा दिये ।

अथ ह भगवानृषभदेवः(स्) स्ववर्षं(ङ्) कर्मक्षेत्र-

मनुमन्यमानः(फ्) प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरै-

र्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां(न्) धर्माननुशिक्षमाणो

जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं(ङ्) कर्म-

समाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां(म्)

शतं(ञ्) जनयामास ॥ 8॥

भगवान् ऋषभदेवने अपने देश अजनाभखण्डको कर्मभूमि मानकर लोकसंग्रहके लिये कुछ काल गुरुकुलमें वास किया। गुरुदेवको यथोचित दक्षिणा देकर गृहस्थ में प्रवेश करनेके लिये उनकी आज्ञा ली। फिर लोगोंको गृहस्थधर्मकी शिक्षा देनेके लिये देवराज इन्द्रकी दी हुई उनकी कन्या जयन्तीसे विवाह किया तथा श्रौत-स्मार्त्त दोनों प्रकारके शास्त्रोपदिष्ट कर्मोंका आचरण करते हुए उसके गर्भ से अपने ही समान गुणवाले सौ पुत्र उत्पन्न किये ।

येषां(ङ्) खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः(श्) श्रेष्ठगुण

आसीद्येनेदं(वँ) वर्षं(म्) भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥ 9॥

उनमें महायोगी भरतजी सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे । उन्हींके नामसे लोग इस अजनाभखण्डको 'भारतवर्ष' कहने लगे ।

तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः(ख्) केतुर्भद्रसेन

इन्द्रस्पृग्विदर्भः(ख्) कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥ 10॥

उनसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट—ये नौ राजकुमार शेष नब्बे भाइयोंसे बड़े एवं श्रेष्ठ थे ।

कविर्हरिरन्तरिक्षः(फ्) प्रबुद्धः(फ्) पिप्पलायनः ।

आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः(ख्) करभाजनः ॥ 11॥

इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवताः(स्) तेषां(म्)

सुचरितं(म्) भगवन्महिमोपबृं(म्)हितं(वँ) वसुदेवनारदसं(वँ)वाद

मुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥ 12॥

उनसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन- ये नौ राजकुमार भागवतधर्मका प्रचार करनेवाले बड़े भगवद्भक्त थे। भगवान् की महिमासे महिमान्वित और परम शान्तिसे पूर्ण इनका पवित्र चरित हम नारद-वसुदेवसंवादके प्रसङ्गसे आगे (एकादश स्कन्धमे) कहेंगे ।

यवीयां(म्)स एकाशीतिर्जायन्तेयाः(फ्) पितुरादेशकरा

महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः(ख्) कर्मविशुद्धा

ब्राह्मणा बभूवुः ॥ 13॥

इनसे छोटे जयन्तीके इक्यासी पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, अति विनीत, महान् वेदज्ञ और निरन्तर यज्ञ करनेवाले थे। वे पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होकर ब्राह्मण हो गये थे ।

भगवानृषभसं(ञ्)ज्ञ आत्मतन्त्रः(स्) स्वयं(न्) नित्यनिवृत्तानर्थ-

परम्परः(ख्) केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्या-

रभमाणः(ख्) कालेनानुगतं(न्) धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्-

नतद्विदां(म्) सम उपशान्तो मैत्रः(ख्) कारुणिको

धर्मार्थयशः(फ्) प्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं(न्) नियमयत् ॥ 14॥

भगवान् ऋषभदेव, यद्यपि परम स्वतन्त्र होनेके कारण स्वयं सर्वदा ही सब प्रकारकी अनर्थपरम्परासे रहित, केवल आनन्दानुभवस्वरूप और साक्षात् ईश्वर ही थे, तो भी अज्ञानियोंके समान कर्म करते हुए उन्होंने कालके अनुसार प्राप्त धर्मका आचरण करके उसका तत्त्व न जाननेवाले लोगोंको उसकी शिक्षा दी। साथ ही सम, शान्त, सुहृद् और कारुणिक रहकर धर्म, अर्थ, यश, सन्तान, भोग-सुख और मोक्षका संग्रह करते हुए गृहस्थाश्रममें लोगोंको नियमित किया ।

यद्यच्छीर्षण्याचरितं(न्) तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ 15॥

महापुरुष जैसा जैसा आचरण करते हैं, दूसरे लोग उसीका अनुकरण करने लगते हैं ।

यद्यपि स्वविदितं(म्) सकलधर्मं(म्) ब्राह्मं(ङ्) गुह्यं(म्)

ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥ 16॥

यद्यपि वे सभी धर्मोंके साररूप वेदके गूढ रहस्यको जानते थे, तो भी ब्राह्मणोंकी बतलायी हुई विधिसे साम-दानादि नीतिके अनुसार ही जनताका पालन करते थे ।

द्रव्यदेशकालवयः(श्)श्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः(स्)

सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं(म्) शतकृत्व इयाज ॥ 17॥

उन्होंने शास्त्र और ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे द्रव्य, देश, काल, आयु, श्रद्धा और ऋत्विज् आदिसे सुसम्पन्न सभी प्रकारके सौ-सौ यज्ञ किये ।

भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन
पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्-
कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं(वँ)
विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥ 18॥

भगवान् ऋषभदेवके शासनकालमें इस देशका कोई भी पुरुष अपने लिये किसीसे भी अपने प्रभुके प्रति दिन-दिन बढ़नेवाले अनुरागके सिवा और किसी वस्तुकी कभी इच्छा नहीं करता था। यही नहीं, आकाशकुसुमादि अविद्यमान वस्तुकी भाँति कोई किसीकी वस्तुकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था ।

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो
ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां(म्) प्रजानां(न्) निशामयन्तीना-
मात्मजानवहितात्मनः(फ्) प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रिता-
नप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥ 19॥

एक बार भगवान् ऋषभदेव घूमते-घूमते ब्रह्मावर्त देशमें पहुँचे। वहाँ बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी सभामें उन्होंने प्रजाके सामने ही अपने समाहितचित्त तथा विनय और प्रेमके भारसे सुसंयत पुत्रोंको शिक्षा देनेके लिये इस प्रकार कहा।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)
सं(म्)हितायां(म्) पञ्चमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥